अध्याय - सप्तदश

चिन्तन

(सरसी छंद)

की संकल्प शक्ति से देहज[1], सब यंत्रणा[2] निरूद्ध ।
किन्तु मनोगति विद्रोहिणि सी,चलती आज विरूद्ध ॥
बाणस्थिरवपु देख वृद्ध का, किसको होगा भान ।
नवोन्मेष को प्राप्त हुआ सा, मन कितना गतिमान ॥1॥

सोचा था अंतर्मुख होकर, गहन करूंगा ध्यान ।
वर्तमान सम चित्त पटल पर, लक्षित विगत महान ।
शिव संकल्पमस्तुतन्मेमन, जपा बहुत यह मंत्र ।
जिसको रखा दास आजीवन, क्यों हो रहा स्वतंत्र ॥2॥

वचनबद्वता जात विवशता, जीवन बना समग्र।
और अकारण विविधोद्यम में, निरत रहा मैं व्यग्र॥
किए विमुक्त आसु[3] जननी ने, मेरे अग्रज सप्त।
क्यों न प्रवाहित किया मुझे भी, जिया सदा अभिशप्त ॥3॥

परम अभागे अष्टम वसु का, द्यौ[4] केवल अभिधान[5] ।
पार्थिवता का दंश झेलता, आजीवन अविराम॥
वासवसम[6] विक्रम भी वसु का, व्यतिक्रम सका न रोक।
दुर्निवारता[7] सिद्ध नियति की, है अवार्य[8] अति शोक॥ 4॥

जब तक मिला सुशीतल आंचल, मां का अमित दुलार ।
तब तक ही रह सका भीष्म के, इस जीवन में सार ।
जनक और जननी का युगपद[9], नहीं मिला वात्सल्य ।
एक अर्थ में न्यून रह गया, जीवन का साफल्य ॥5॥

मिले उतथ्यानुज[10] से गुरूवर, भार्गव[11] से आचार्य ।
धन्य हो गया विद्या पाकर, पर प्रकटा अनिवार्य ।
आना पड़ा लोक में, जिसमें मृदा मृत्यु सुप्रधान ।
पादन्यून द्विशताब्द[12] सहा है, विधि का अमिट विधान ॥6॥

1. शरीर से उत्पन्न	5. नाम	9. एक साथ
2. भारी पीड़ा	6. इन्द्र के समान	10. बृहस्पति
3. शीघ्र	7. जिसका निवारण संभव न हो	11. परशुराम
4. भीष्म के पूर्व जन्म का नाम	8. जिसका निवारण संभव न हो	12. 175 वर्ष

कामविवश हो चक्रवर्ति भी, कितना होता दीन ।
महासत्व[1] को भी कर देता, याचकत्व श्रीहीन ॥
और क्रूर कितना हो सकता, अवसरवादी नीच ।
कितना धूर्त मनुज हो जाता, स्वार्थवल्लरी सींच ॥7॥

बना देवव्रत भीष्म पिता को, देने पुष्कल[2] हर्ष ।
निजप्रति किन्तु अमर्ष बन गया, उनका चिर अनुतर्ष[3] ॥8॥

(सार छंद)

अविदित कोमलता मम प्रज्ञा
दृढ़ आधारशिला है ।
जिसका अंतर[4] देख दैन्य दुख
अबला के न हिला है ॥
खोई अपने जीवन की भी
सुकुमारता मसृणता[5] ।
पास रह गए केवल विक्रम
पौरूष और प्रखरता ॥9॥

संतत[6] जिस पर चढ़ी हुई ज्या[7]
जीवन हुआ सरासन ।
हृदय दुर्ग से किया भावना
का प्रसह्य[8] निष्कासन ।
होकर भी गंगासुत सूखी
जीवन की रसधारा ।
सहकर भी बहु खेद न तोड़ी
परम्परा की कारा ॥10॥

1. महान, तेजस्वी	5. कोमलता
2. विपुल, प्रचुर	6. निरन्तर
3. प्यास, तृष्णा	7. धनुष की डोरी
4. हृदय	8. बल पूर्वक

पूर्व दिशा में काशिराज से
थी मैत्री अभिलाषा ।
पर वे कुरू अवहेला उद्यत
पाले रहे दुराशा ।
दुहिताओं का किया स्वयंवर
भव्य विशद आयोजित ।
पर आमंत्रण मिला न कुरू को
कतिपय[1] नृप अनुमोदित ॥11॥

इस अवहेलाजात रोष से
पूरित था मन मेरा ।
गया काशिका[2] था एकाकी
नृप गण ने था घेरा ॥
किए परास्त उपस्थित नृप सब
काशिप[3] विनत वदन थे ।
भूपति गण के हृदय भीति के
बने अभेद्य सदन थे ॥12॥

ब्रह्मचर्य व्रत विश्रुत जगत में
वे कन्या हरते हैं ।
अबला अवमानना प्रयोजन
से सायक[4] धरते है ॥
प्रकट हुआ यह सत्य मृषा[5] ही
पूजित है कुरू अन्वय[6] ।
मात्र शक्ति मद और जिगीषा[7]
का यह क्रूर समन्वय ॥13॥

1. कुछ	5. झूठे ही, व्यर्थ
2. काषी नगरी	6. वंश
3. काशी नरेश	7. जीतने की इच्छा
4. बाण	

सुन सरोष अम्बा वाणी मैं
क्षण को हुआ निरूत्तर ।
क्या स्वेच्छाचारिता अंलकृत
भारत में बलवत्तर ॥
क्षात्रतेज रक्षणपथ तजकर
बना स्वयं अपहारी ।
आर्य देश में भी अबला क्यों
बने न दीन विचारी ॥14॥

आर्द्र दृष्टि गांधारसुता की,
क्रुद्ध दृष्टि अम्बा की ।
नहीं याद आयेगी आगे,
शोधन[1] अवलम्बा की ॥
सब कुछ था उस प्रखर दृष्टि में,
आशा, अनुनय करूणा ।
बनी अन्ततः प्रखर रोषणा[2],
दीपित भेदक अरूणा ॥15॥

(छंद विष्णुपद)

सतत वृत्तान्त संसूचक किए बहु चार[3] संयोजित
सकल गतिविधि मुझे थी काषिजा की नित्य अववोधित ।
किया तप घोर जाकर अर्कजा[4] तट पर मनस्विनि ने
किए फिर वत्स[5] में उपवास आश्रमगा तपस्विनि ने ॥16॥

भटकती फिर रही बहु आश्रमों में काशिनृप दुहिता ।
सुना जब-जब हुई बहुशः हमारी चेतना दुखिता ।
हमारे एक दुष्कृत[6] से तमोमय हो गया जीवन ।
सकल वय पर गया छा हाय मम आचार कृत दुर्दिन ॥17॥

1. प्रतिशोध चुकाना	4. यमुना
2. कोप	5. वत्स देश
3. गुप्तचर	6. पाप, अपराध

प्रणय की दिव्यता तुमको रही अज्ञात सौभेश्वर[1] ।
रहोगे आमरण[2] अब जोड़ते बस तुच्छ कटु नश्वर ।
कृता अवमानिता है इन्दिरा[3] सी स्वयं समुपस्थित ।
विमुख तव भाग्य ही मानो हुआ अनिवृत्ति[4] को प्रस्थित ॥18॥

दिया था दान जीवन का प्रणय तू दे नहीं पाया ।
अनर्घा[5] त्याग कर मणि को अहं पाषाण ही भाया ।
रखे जो भाव कलुषित प्रेम की शुभ दीप्ति क्या जाने ।
स्वयं प्रक्षेप हैं तव चित्त के आक्षेप मनमाने ॥19॥

भरा था कार्तस्वरमयकलश[6] में पीयूष सा उज्ज्वल ।
अमल अनुराग आगत अतिथि सा आशा लिये निश्छल ।
किया उस पर अरूंतुद[7] अशनिवत[8] आघात निर्मम हो ।
रहो अज्ञात वैभव भाव जग में तुम अकिंचन हो ॥20॥

रहे अविमान[9] ही सविमान[10] होकर भी महीपति तुम ।
न जग को देख पाए उच्चता से हो नभोगत[11] तुम ।
नहीं वैराग्य जगता मनुज में अनुराग ठुकराकर ।
किसे सुख शान्ति मिलती अनघ[12] के मृदु स्वप्न बिखराकर ॥21॥

विषादाक्रान्ति[13] मन की की निवेदित सदय[14] नारद से ।
समुत्थित उर्मियों ने की अपास्ता[15] शान्ति उर ह्रद[16] से ।
कहा देवर्षि ने हंस कर न वासव[17] वृत्ति तुम धारो ।
तपस्या देख साधक की न मन से देवव्रत हारो ॥22॥

कहा मुझको नहीं ऋषिवर तनिक भी मोह जीवन का ।
उठाती कोमला नृपजा भयावह कष्ट जो वन का ।
उसी का मूल कारण मैं स्वयं को मान परितापित ।
रहा हूं आज तक जीवन हुआ ज्यों हंत! अभिशापित ॥23॥

1. सौभ विमान का स्वामी शाल्व	7. मर्म भेदी	13. दुख का आक्रमण
2. जीवन पर्यन्त, मृत्यु तक	8. वज्र के समान	14. दयावान
3. लक्ष्मी	9. अहंकार युक्त	15. दूर की गयी
4. न लौटना	10. विमान युक्त	16. सरोवर
5. अमूल्य	11. आकाश गामी	17. इन्द्र
6. स्वर्ण	12. निष्पाप	

गिरा गंभीर नारद और पाराशर्य[1] की गूंजी ।
यहां हर जीव लाता साथ संचित कर्म की पूंजी ।
मिला करता यहां प्रारब्ध के वश ही शुभाशुभ फल ।
नहीं यति भिन्न कर्ता से अनुष्ठित कर्म है निष्फल ॥24॥

न निज की भी नियति का है नियंत्रण शक्य मानव को ।
कहां परभाग्यपरिवर्तन भला संभव यहां नर को ।
न अम्बा अरति[2] के उद्‌गम हुए तुम एक ही कुरूवर ।
अनेकानेक घटनाएं हुईं हैं फलवती दुस्तर[3] ॥25॥

बनाया देवव्रत से भीष्म तुमको एक नारी ने ।
मिटाने का लिया है व्रत तुम्हें ही एक नारी ने ।
रहे हो दूर तन मन से भले गांगेय अबला से ।
कहां पर तव नियति निरपेक्ष है कुरू श्रेष्ठ प्रबला से ॥26॥

(सार छंद)

हो अम्बे प्रतिशोध तुम्हारा
भीष्म रूधिर से पूरा ।
क्यों जाए गंगा सुत दिव[4] में
करके न्याय अधूरा ॥
कहॉ देवव्रत रहा बना मैं
भीष्म भयद[5] इस जग में ।
अहंकार अतिमान भर गया
कौशल का रग-रग में ॥27॥

1- वेद व्यास जी
2. पीड़ा
3. जिसे पार करना कठिन हो
4. स्वर्ग
5. भय देने वाला

कभी सोचता था सर कार्मुक[1]
सब हल कर सकता है ।
बल पौरूष युत नर जीवन को
सुख से भर सकता है ॥
किन्तु मार्ग है नियत पथिक बस
उस पर ही चलता है ।
जब तक होता सत्य बोध यह
जीवन दिन ढलता है ॥28॥

यदि होता बस मनुज नियामक
सारे घटनाक्रम का ।
रूचि अनुसार प्रतिफलन[2] होता
उसके सारे श्रम का ॥
तो वेदना दैन्य दु:ख दारूण
कौन ग्रहण नर करता ।
लिए शल्य पशचातापों के
कौन विवेकी मरता ॥29॥

उद्धत चित्रांगद को देखा
अल्प आयु में मरते ।
लघु गन्धर्व युद्ध में सद्य:[3]
कुरू के स्वप्न बिखरते ॥
अनुज विचित्रवीर्य भी निकले
नृप ययाति सम भोगी ।
निंद्य विलासवृत्ति ने असमय
किया उसे भी रोगी ॥30॥

1- धनुष
2- परिणाम
3- तुरन्त

(हरिगीतिका)

करके विनय अभिनय सुबलसुत[1], रहा विष ही घोलता ।
कुरू षक्ति के दृढ़बन्ध क्रमश:, निभृत[2] रहकर खोलता ॥
अभिवर्धिता की शासनेच्छा, अलोचन[3] नर राज की ।
वश्या[4] करी बनकर हितैषी, मनीषा[5] युवराज की ॥31॥

(सरसी)

अहंकार सुविमूढ सुयोधन, अक्ष[6] नृपति को अक्ष[7] ।
करके कुरूजन द्यूत पट्टवत, मुदित खेलता दक्ष ॥32॥

परप्रयोज्य भी मानी जाती, नहीं साधु[8] कवि[9] नीति ।
उसे कुटुम्ब प्रयुक्त कर रहा, यह गतंचिंता भीति ॥33॥

लाक्षा गृह कुप्रयास आसुरी, वृत्ति निदर्शन घोर ।
उसमें हुई प्रदग्ध नीति ही, देखा पुन: न भोर ॥34॥

उसका भी था सूत्रधार यह, गान्धाराधिपजात[10] ।
म्लेच्छ पुरोचन को लाया था, बतलाकर अभिजात ॥35॥

महावृक्षवत छाया देने, का रचकर पाखण्ड ।
राज सौध[11] प्राचीर कर रहा, छिपी जडों से खण्ड ॥36॥

पाशों को ही बना पाशवत, बांधे पाण्डव धीर ।
विवश देखते रहे मानक्षति, दास बने वर वीर ॥37॥

(सार छन्द)

याद करो तुम कौन पुरोचन
को लेकर आया था ।
लाक्षाग्रहषडयंत्र द्यूत का,
छद्म किसे भाया था ॥
पर प्रतिशोधवह्नि उद्दीपक,
जो विशेष कारण था ।
कुरूकृत सुता याचना कारित
सुबलान्तर[12] दारण[13] था ॥38॥

1. शकुनि	5. बुद्धि	9. शुक्राचार्य
2. छिपकर , गुप्तरूप से	6. जन्मांध	10. शकुनि
3. अन्धा	7. पासे	11. महल
4. वश में रहने वाली	8. अच्छा, श्रेष्ठ	12. गंधार देश के राजा सुबल का हृदय
		13. फाड़ देना, विदीर्ण कर देना

क्या नारी है वस्तु स्वत्व क्या,
नर क्या उसका स्वामी ।
क्या वह भी है पण्य[1] दाव पर,
धरे द्यूत का कामी ।।
गूँज रहे हैं उभय कर्ण में,
प्रश्न दुरपददुहिता[2] के ।
कुरू कुल की कुल वधू द्यूत छल
विजिता दु:ख मृदिता के ॥39॥

पुन: हुआ मैं विफल मानवी
की रक्षा करने में ।
रहा खोजता तर्क षास्त्र के
मन विषाद हरने में ॥
नारी के सुकुमार गहन अति
विषद प्रयत[3] अंतर को ।
समझ नहीं पाया आजीवन
खोजा अभ्यंतर को ॥40॥

तब जो उत्तर दिया लोक में
मानित विधि सम्मत था ।
परम्परा से बद्ध क्रूर यद्यपि
वह मेरा मत था ॥
सब अप्रीतिकर और अरूचिकर
सुना और सब देखा ।
घनीभूत हो खिंची उर शिला
पर विषाद की रेखा ॥41॥

1. दांव पर लगाने योग्य	2. द्रौपदी	3. पवित्र

गर्हित[1] परम्परा को भी यदि
विवश मनस्वी ढोता।
धार विवेक बुद्धि की क्रमश:
वह सप्रज्ञ[2] है खोता ॥
क्या हम नहीं बली वह गज हैं
जो अंकुश के भय से।
ढोता आजीवन लघुनर को
आज्ञा मान विनय से ॥42॥

तेज व्यर्थ है यदि न पाप का,
तिमिर[3] हटा सकता हो।
शौर्य मृषा है यदि न शत्रु के,
ऊपर छा सकता हो॥
पर यदि अवनति मूल बना हो,
सिंहासन आरोही।
करे अन्धता धारण सब कुछ,
सुनकर भी सुत मोही ॥43॥

कुरूकृत यह अपमान शल्य सा
चुभता रहा हृदय में।
इसका शोधन दिखा शकुनि को,
अहं अनीति उदय में॥
अतिपटुता से किए यत्न सब
सफल हुआ कुरूक्षय में।
उसे लाभ दोनों विधि होगा,
जय में या कि अजय में ॥44॥

1. निन्दनीय 2. प्रज्ञावान 3. अंधकार

लूँगा मैं विश्राम सघन वट,
की होगी शुभ छाया ।
यह विशाल कुल वृक्ष यत्नत:
मैनें समुद्र[1] लगाया ॥
देख रहा हूँ विवश उसी की
शाखाएं अब कटते ।
ऊर्ध्व जड़ों की जगह देखता
विष के जाल लटकते ॥45॥

शठ वेषित[2] हो वेष्म[3] सुविक्रम
विवश खड़ा रह जाता ।
कुण्ठित होते बाण निरर्थक
धनुष चढ़ा रह जाता ।
बहुश: हुए प्रयुक्त अपावन
साधन बंधु विजय को ।
रहा देखता मौन जुगुप्सित[4]
वर्धनशील अनय को ॥46॥

अपनी ही इच्छाओं से जो
कभी नहीं जी पाया ।
इच्छामरण उसे वर देकर,
विधि ने है भरमाया ।
कितना और देखना होगा,
दु:ख बूढ़ी ऑखों को ।
कब तक प्राणविहंगम रोके,
सबल चपल पांखों को ॥47॥

1. प्रसन्नता पूर्वक	2. प्रविष्ट	3. घर
4. घृणित		

निज अजेयता का क्या कुछ भी,
सत्प्रयोग कर पाया ।
जिन से सीखा ज्ञान उन्हीं गुरू
प्रतिमुख[1] धनुष उठाया ॥
त्याग किया पर नहीं गए मम,
जनक जगत से हर्षित ।
बँधा रहा होकर विरक्त भी,
कुरू से प्रण आकर्षित ॥48॥

(सरसी छंद)

हीं तनिक भी खेद या कि फिर,
सरोष हमारे मन में ।
पूर्ण हुआ प्रायश्चित शर-मय,
देह हुई जो रण में ॥
जीवन भर से छिदे हुए थे,
ये शर गहरे मन में ।
अब वह है अति स्वस्थ विचरता,
ऋत के शुभ उपवन में ॥49॥

(सरसी छन्द)

क्यों लाए यह अशुभ सूचना, मुझ तक तुम कुरूवीर।
चले गए आचार्य छोड़कर, हमको सागर तीर ॥
धनुर्वेद ही चला गया है, तज असार संसार ।
ढोने को हैं विवश यहां हम, मात्र व्यथा का भार ॥50॥

धर्मराज ने अर्धसत्य का, ऐसा घृणित प्रयोग ।
किया स्वयं निज गुरू के ही प्रति, पाने को जययोग ॥
जिसने शस्त्र ग्रहण सिखलाया, उनका आयुधत्याग ।
करा दिया सुत वध भ्रम जनकर, कैसा जय अनुराग ॥51॥

ज्ञानी को भी हो सकता है, क्या इतना सुतमोह ।
मात्र एक सूचना कराती, नाकपंथ[2] आरोह ॥
अब है कृपी अकेली जग में, करूणा की प्रतिमूर्ति ।
इस महान क्षति की हो सकती, नहीं कभी प्रतिपूर्ति ॥52॥

1. विरूद्ध	2. स्वर्ग का मार्ग

अब न उठेगी उस कुटीर से, दिव्य हवन की गंध ।
अब न खुलेगें कभी शास्त्र के, गहन अर्थदृढ़बंध ॥
हर अन्तेवासी[1] को अतिरथ[2] ,अब कर सकता कौन ।
होगी त्रयी[3] मूक धारेगा, अब अथर्व चिर मौन ॥53॥

गये द्रोण कर के भार्गव के, यश का शुभ्र प्रसार ।
अधिगत[4] कर अशेष विद्याएं, धनुर्वेद का सार ॥
शिष्य त्रयी में आज यहां है, एक वीर ही शेष ।
रक्षा उसकी करें शूलहर[5], जगदाधार महेश ॥54॥

शब्द वेध जो सिखलाते थे, हुए शब्द से विद्ध ।
ज्ञानी द्विज की पर अजेयता, द्रोण कर गए सिद्ध ॥
दृष्टद्युम्न धृष्टता न रोकी, रहे देखते वीर ।
क्या न एक भी शेष इषुधि[6], में था अमोघ शिततीर ॥55॥

जाना कृप कृपीज[7] को लेकर, व्यथित कृपी के पास ।
जिस साध्वी पर टूट पड़ा है, विपदा का आकाश ॥
कहना देकर गए तुम्हें वे, गुणनिधि अमर सुपुत्र ।
सबका दुःख अवगम्य[8] मुझे है, यद्यपि अजानि[9] अपुत्र[10] ॥56॥

अतनु[11] तितिक्षा[12] धारे अब वह, तनु केषी[13] तनुकाय ।
नहीं नियंता मनुज नियति के, सम्मुख सब निरूपाय ॥
भरद्वाज के अंश अयोनिज[14], तुमको नित्य प्रणाम ।
शरषायी यह वृद्ध देखता, नित रण दुष्परिणाम ॥ 57॥

सबसे अधिक नृपति पहुंचाए, तुमने ही सुरलोक ।
आजीवन सुख स्त्रोत दे रहे, आज हमें घनशोक ॥
बालसखा का नहीं दुरपद कृत, होता यदि अपमान ।
नहीं प्राप्त कर पाते कुरूजन, शस्त्रशास्त्र का ज्ञान ॥58॥

1. शिष्य	2. अतिरथी वीर	3. तीन वेद (ऋक, साम , यजु)
4. प्राप्त	5. शिवजी	6. तूणीर
7. कृपी पुत्र अशवत्थामा	8. जानने योग्य	9. अविवाहित, जिसके स्त्री न हो
10. पुत्रहीन	11. विराट	12. सहनशक्ति
13. कम केशों वाली	14. दिव्य उत्पत्ति वाला	

(सरसी छंद)

यद्यपि था अतिदृप्त[1] महारथ, था अजेय पांचाल ।
पड़ा चुकाना विज्ञानी के, सम्मुख उसको भाल ॥
एक तुम्हारे कारण कुरूजन, रहा सदैव अजेय ।
मैं हूं परम कृतज्ञ विप्रवर, था अनुक्रोश[2] अमेय[3] ॥59॥

शब्द ब्रम्ह है आप्त[4] वचन है, शास्त्रों से निर्णीत ।
बन सकता यमराज शब्द ही, होता यही प्रतीत ॥
कूटनीति ने लुप्त कर दिया, नर कुंजर का भेद ।
विजय लालसा नहीं कर सकी, अनयार्जन प्रतिषेध[5] ॥60॥

गुरूछलकिल्विषमग्न[6] हुए हैं, आज यहां धर्मज्ञ ।
निजहित साधन हेतु दे रहे, नव व्याख्या मर्मज्ञ ॥
ग्रहण कर रहे रीति नीति के, अपने अपने अर्थ ।
गर्हणीय[7] हो रहा शास्त्र की, गरिमा साथ अनर्थ ॥61॥

लाओ गुरू पादुका इषुधि भी, और दिव्य इष्वास[8] ।
उन्हें लगालूं निज मस्तक से, कहा छोड़ नि:श्वास ॥62॥

कहना पाण्डव दल नायक उस, दुरपदात्मज से आज ।
किया विमानित[9] क्षात्र धर्म को, गयी वीरता लाज ॥
नहीं प्रतिज्ञा पालन करते, स्वयं पतित हो आर्य ।
ध्यान मग्न द्विज सिर उच्छेदन, है पिशाच का कार्य ॥63॥

(रूपमाला)

तुम तमोहर[10] हो तमोहर[11], ढक किया यह कृत्य ।
सुनिश्चित कर रहे नर की, जय अगम अधिगत्य[12] ॥
है अविज्ञेया[13] सदा ही, हरि तुम्हारी नीति ।
जयद्रथ सजनक निहत है, यह विचित्रा रीति ॥64॥

मिल गया सौभद्र वध का, शीघ्र समुचित दण्ड ।
महारथगण वीरता का, दूर हो पाखण्ड ॥
किंतु यह क्या रात्रि में भी नहीं रण अवसान[14] ।
हो रहा हर नियम रण का देख लो म्रियमाण[15] ॥65॥

1. बहुत घमण्डी	7. निंदनीय	13. न जान सकने योग्य
2. कृपा	8. धनुष	14. अन्त
3. जिसे मापा नहीं जा सकता	9. अपमानित	15. मरणासन्न
4. ज्ञानियों द्वारा कहा गया	10. अंधकार दूर करने वाली	
5. रोकना	11. सूर्य	
6. पाप	12. प्राप्त करने योग्य	

(दोहा)

सुनकर दिनकर[1] सुत निधन, कौरव दल की हार ।
शरषायी[2] के वदन से, निकल पड़े उद्‌गार ॥66॥

खण्ड-खण्ड क्षण में किया, आखण्डल[3] का मान ।
चण्डज्योति[4] के जात को, जगत न पाया जान ॥67॥

रोला

सद्‌गुण का आगार, अखिल भूमण्डलमण्डन ।
कृतपौरूषकरवाल[5], नियति का संतत खण्डन ।
चण्डवीर्य जितशत्रु, गया रण क्षेत्र प्रभंजन[6] ।
दानवीर निष्काम, दलितदुखमूल विभंजन ॥68॥

(सार)

अवहेला गरलाषन[7] तू सच
पूजक खण्ड परशु[8] का ।
अन्तेवासी[9] तू अंतिम था
अनुपम खण्ड परशु[10] का ।
खण्डिनि[11] तू हो गई अपुत्रा
आई विपदा भारी ।
खण्डितारि घनदर्प नहीं है
अब अखण्ड व्रतधारी ॥69॥

चला सार हित मित्र का, तज असार संसार ।
अतुलसार[12] तू कर गया, यश का अमित प्रसार ॥70॥

कुण्डलिया

गुणवत्ता पुरूषार्थ का, तव चरित्र अभिसार[13] ।
नहीं मृत्यु भी मिल सकी, वीरों के अनुसार ॥
वीरों के अनुसार, भार भूतल ढोएगा ।
इस अनीति पर सतत्‌, आर्य गौरव रोएगा ॥
संतत होगी प्राप्त, तुझे जन मानस सत्ता ।
हुए निराश्रित आज दान विक्रम गुणवत्ता ॥71॥

1. कर्ण	2. बाणों की शय्या पर	3. इन्द्र
4. सूर्य	5. तलवार	6. झंझावात
7. अपमान रूपी विष को पीने वाला		8. शिवजी
9. शिष्य	10. परशुराम स्थित भीष्म	11. पृथ्वी
12. अनुपम, शक्तिशाली	13. प्रिय मिलन	

(सरसी)

मानी महारथी माद्री के, अग्रज वे मद्रेष ।
आज हुए धर्मज[2] के हाथों, ही रण में यश शेष[3] ॥
कुरू हितार्थ ही नृप होकर भी, अंगीकृत सारथ्य ।
छोड़ गए वैराटनिषूदन हमको, हाय अपथ्य[4] ॥72॥

रहे शल्य सम सदा द्विषत को, मानी अतिरथ शल्य ।
टाल नहीं पाये कुरू दल का, समरभूमि वैफल्य[5] ॥
अंगराज उत्साह विभंजन, नहीं साधु था कर्म ।
कृतनिजवचन विशेष आचरित तदपि रहा सद्धर्म ॥73॥

(कुण्डलियां)

जिस दुरंत पथ पर चले वारित[6] भी बहु वार ।
उस पर धुरव[7] था अवरमति[8], ऐसा ही संहार ॥
ऐसा ही संहार, सुपेष्टितसक्थ[9] पड़े हो ।
कुरू कुल हुआ विनष्ट, भूमि से विवश जड़े हो ॥
हठर् ईर्ष्या अति मान, कुफल ऐसे धरते हैं ।
वीर वदान्य वरेण्य, मूढ़ के हित मरते हैं ॥74॥

दोहा

नयन पट्टिका अब हुई, गांधारी को व्यर्थ ।
तिमिरमयी जगती सकल, हतपुत्रा के अर्थ ॥75॥

तुममे जो थे देखते, नित भारत सम्राट ।
आंबिकेय[11] अब देख लें, दुखमय शून्य विराट ॥76॥

हरि द्रोही यद्यपि प्रखर, चेदिराज या कंस ।
हरिकरलब्धविमुक्ति हैं, बचा रहा पर वंश ॥77॥

द्रोहानल पर तुम्हारा, कर भारत का अंत ।
तुम्हें समित्र सबंधुता[12], हुआ जलाकर शांत ॥78॥

1. शल्य	7. निश्चित
2. युधिष्ठिर	8. विकृष्ट बुद्धि
3. जिनकी कीर्ति ही शेष रह गयी है ।	9. चूर चूर हड्डियों वाला
4. हानि, दुर्भाग्य	10. जिसका पुत्र मारा गया हो ।
5. विफलता	11. धृतराष्ट्र
6. रोका गया	12. बंधु वर्ग सहित

(सरसी छंद)

तुमने भी तो हे द्रोणात्मज[1], किया कर्म अति क्रूर ।
करदी निशा अनंत पाण्डवों, की ऐसे हो शूर ॥
होता विप्र अजातशत्रु[2] है, करूणामूल द्विजत्व ।
तुम अजात रिपु बने खेद है, खोकर भी मनुजत्व ॥79॥

भोग वेदना क्षणिक गये हैं, सुरपुर[3] सारे भूप ।
किंतु सुयोधन और भीष्म ने, झेले दुख बहुरूप ॥
शापित किंतु कृपीज[4] तुम्हारी, पीड़ा घोर अजस्त्र ।
कैसे वर्ष बिताओगे कटु, हे सुत तीन सहस्त्र ॥80॥

स्वामिभक्तिवश विस्फोटित जो, हिंसा का उद्रेक[5] ।
वाष्पीकृत कर गया तुम्हारा, सहज प्रदीप्त विवेक ॥
दिव्य अयोनिज दंपति की तुम, ऋषिवत शुभ संतान ।
विगत स्वार्थ अभिशप्त कृष्ण से, हुआ महान अनर्थ ॥81॥

(रूपमाला)

देखता जब उदित होते, प्रात अरूणिम भानु ।
भासती प्राची[6] सरोषा[7], सूत[8] दीप्त कृषानु[9] ॥
उसे ढक लेता कभी तो, सघन अति नीहार ।
सृष्टि का संवेदनायुत, नयन जल संभार ॥82॥

सरसी

लगता है परितप्त करेगा, चिर तक उच्च दिनेश ।
किंतु पतन में समय क्षिप्रतर, होता यहां विशेष ॥
अस्तोन्मुख रवि क्षेपित करता, लक्ष्य भ्रष्ट करतीर ।
आकर्षितज्यामोचित सद्यः, छिन्नशीर्ष ज्यों वीर ॥83॥

लगते हैं उपक्षितिज[10] व्योम में, गजवत कृष्णपयोद[11] ।
मानो दिग्गज देख रहे हैं नर विग्रह गतमोद ॥
वर्धमान तम से दिखते हैं, तुंग विटप दूरस्थ ।
मानो उच्च शिविर सेना के, रणभू के पार्श्वस्थ ॥84॥

1.अष्वत्थामा	5. आधिक्य	9. अग्नि
2. सबका मित्र	6. पूर्व दिशा	10. क्षितिज के पास
3. स्वर्ग	7. क्रोध युक्त	11. मेघ
4. कृपी पुत्र अष्वत्थामा	8. उत्पन्न किया हुआ	

तमरजसत्वक्रमा है प्राची, वरूण दिशा[1] विपरीत ।
गमनोत्सुकरविभावत नरता, पश्चिममुखी प्रतीत ॥
क्षितिज गर्भगत रवि होने पर भी यह गगन सराग[2] ।
वैसा ही मन मुझ मुमूर्षु[3] का, कुरू प्रति धृत अनुराग ॥85॥

पुन: बालवत रवि होता है, पाकर तेरी क्रोड[4] ।
मैं भी जीवन की संध्या में, बनूं बाल अघछोड़ ॥
करो न लंबी तुम छाया को मनुज पूर्व ही दृप्त ।
निज अभ्युदय विनाश स्वयं ही,करता यह अभिशप्त ॥86॥

जीवन संध्या ही नरता की, मानो है आसन्न ।
लौट रहे हैं जीव विहंगम, आदि नीड सुप्रसन्न ॥87॥

कर लेती हो नभ रक्तिमता, अन्तर्हित[5] तुम आशु ।
हरो प्रतीची धरणी की भी, लोहितता[6] अकृतासु[7] ॥
प्रकटित हो कुछ क्षण में क्षणदा[8], रूके यहां संग्राम ।
मानव तन मन को मिल जाए चिर अभीष्ट विश्राम ॥88॥

पुनरूज्जीवन में अक्षम हो, मानो होकर खिन्न ।
आज समुत्सुक हुआ सुधाकर रखे नाम कुछ भिन्न ॥
देख दुखार्त धरा को लगता, रोषारूण सा मौन ।
छिपता पुन:-पुन: अभ्रों[9] में, द्रवितान्तर[10] सा सोम ॥89॥

(रूपमाला)

आवरणक्षम है जलद पट, यदपि रवि रोचिष्णु[11] ।
ढक रहा अज्ञान तम है, जीव यद्यपि जिष्णु[12] ॥
अल्पकालिक भी क्षयावह, किंतु यह तम हेय ।
इसी में होती जगत की, नाटिका अभिनेय ॥90॥

कौन कर्दम[13] में पड़ेगा, ज्ञात आभा रूप ।
कौन जाये तम गुहा में, त्याग मीठी धूप ॥
सुधा चख किसको रूचेगा, क्षुद्र वापी वारि ।
कौन लेगा अष्म पा कर, मणि महार्घ[14] मुरारि ॥91॥

1. पश्चिम दिशा	8. रात्रि
2. लालिमा युक्त	9. बादल
3. मरणासन्न	10. दुखी हृदय वाला
4. गोद	11. प्रभामय
5. अपने में समा लेना	12. विजयी
6. रक्तिमता	13. कीचड़
7. प्राणनाशिनी	14. बहुमूल्य